International Journal of Hindi Research

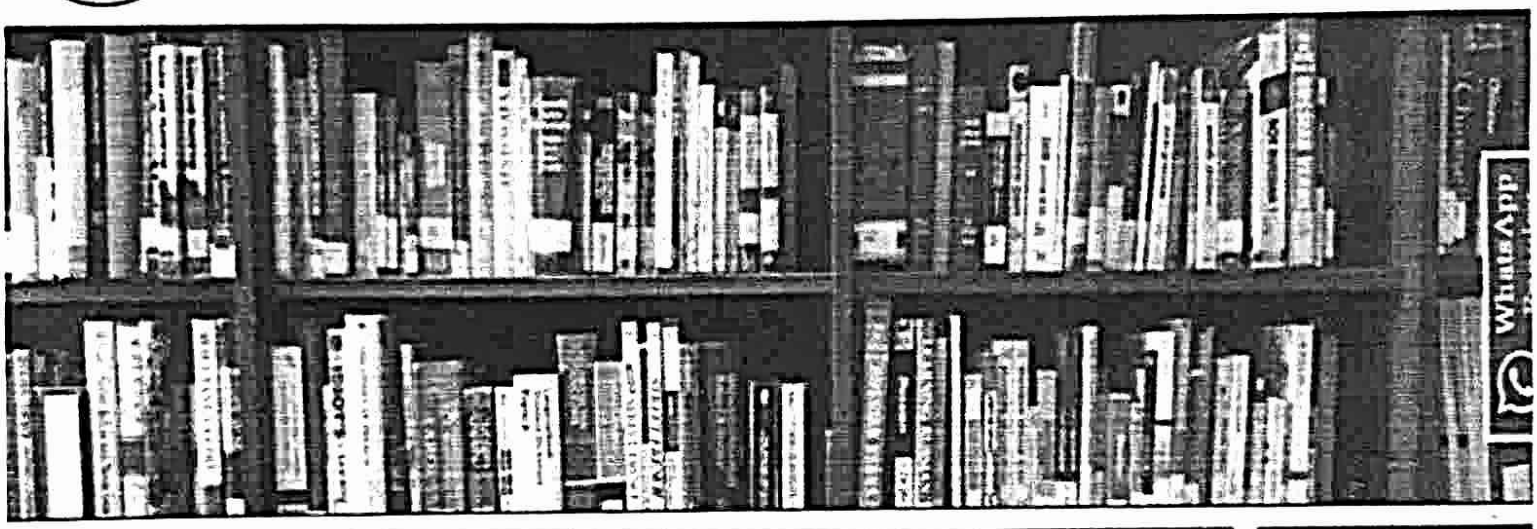

SUBMIT YOUR ARTICLE

hindi.manuscript@gmail.com

CERTIFICATE

VOL. 3, ISSUE 2 (2017)

S.No.	Title and Authors Name
1	धरती का कवि त्रिलोचन मंजू देवी Abstract | Download | Pages: 01-05 How to cite this article: मंजू देवी. धरती का कवि त्रिलोचन. International Journal of Hindi Research, Volume 3, Issue 2, 2017, Pages 01-05
2	गीता: विषाद से क्रान्ति और क्रान्ति से सृजन प्रो0 संगीता जैन, प्रो0 लक्ष्मी शर्मा

Journal List

SEARCH

INDEXING

RJIFACTOR

...ational Journal of Hindi Research

International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2017; Page No. 109-111

नई सदी में आदिवासी साहित्य एवं अस्मिता का यथार्थ

डॉ0 प्रीति सिंह

पी0डी0एफ0, लखनऊ विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

आदिवासी समाज वह समाज है, जो आज भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्षरत है। भारत एक ऐसा विशाल राष्ट्र है, जिसमें आदिवासी अधिक संख्या में निवास करते है। सम्पूर्ण भारत का लगभग सात प्रतिशत आबादी आदिवासी समाज का है। भारत जैसे विशाल राष्ट्र में भाषा, धर्म, जाति तथा वेषभूषाओं की भिन्नताओं की तरह आदिवासियों में भी भिन्नताएँ पायी जाती है। ये समस्त आदिवासी भारत के मूल निवासी है। इन्हें हम जनजाति, आदिमजाति, गिरिजन, तथा अनुसूचित जनजाति के नाम से जानते है। इन आदिवासियों के अलग-अलग नाम, उनके अनेक उपजातियाँ, उनकी संस्कृति, खान–पान, रहन–सहन, भाषा पूरी तरह से एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी इनकी समस्याएँ, इनका जीवन, जीवन साधन और सामान्य तरीके लगभग एक से हैं।

आदिवासियों को परिभाषित करते हुए श्यामाचरण दुबे लिखते है:– "जनजातियों की जड़े इस देश में बहुत गहरी और पुरानी है। उनका परिवेश अगम्य भले ही रहा हो, किन्तु उसकी दूरी ने सांस्कृतिक प्रभावों पर स्वाभाविक नियत्रंण रखा है। जनजातियों का समाज बोध सीमित और उथला है। अपनी सांस्कृतिक समग्रता, भाषाओं, संस्थाओं, विश्वासों और प्रथाओं के आधार पर समाज के शेष भागों में वे अलग दिखाई पड़ते है। जनजातियाँ समतावादी भले ही न हों किन्तु उनमें आंतरिक स्तरण और विशेषीकरण बहुत कम होता है।"[1]

यह एक दुखद बात है कि इस धरा का मूल निवासी आदिवासी होने के बावजूद तथाकथित सभ्य समाज की बर्बरता से यह समुदाय जंगलों, कंदराओं की ओट में रहने के लिए विवश रहा। प्रकृति से साहचर्य स्थापित कर यह समुदाय जल, जंगल और जमीन के किसी कोने दुबका रहा। विकास और सुविधा संसाधन से वंचित रहा। परन्तु लगातार विस्थापित होने के बावजूद इस समुदाय ने अपनी संस्कृति सभ्यता, भाषा को कभी त्यागा नहीं। लाभ–लोभ की प्रवृत्ति से दूर रहकर आदिवासी समुदाय ने सदियों से जंगलों में कंदमूल खाकर, पोखरों, झरनों का पानी पीकर जीवन–यापन किया– पूरे आत्माभिमान सहित अपनी भाषा, सहित और जीवन शैली को जिन्दा रखते हुए जीवन यापन किया।

लगातार शोषण और विस्थापन के शिकार रहने के कारण ही इस समुदाय में आक्रोश का भाव तीव्र होता रहा। जैसे–जैसे आदिवासी वर्ग शिक्षा और नागरी परिवेश से परिचित हुआ, उसे अपने मूल्य और वजूद का एहसास सालने लगा। आदिवासी अपने को छला हुआ, विकास की मुख्यधारा से वंचित और समाज का बहिष्कृत हिस्सा समझने लगा। उसमें अपने शोषण का बोध जैसे–जैसे बढ़ता गया, वैसे–वैसे उसने सभ्य जातियों के अत्याचार के विरूद्ध बगावत का रास्ता अख्तियार किया।

इसी अत्याचार के विरूद्ध आदिवासियों में उभरती हुई चेतना के विषय में 'रमणिका गुप्ता' लिखती हैं– "देखो! हम एक ऐसे समाज है, जिनके मूल्यों का न तो ह्रास हुआ है, न ही उनमें विकृति आई है। हम सामूहिक जीवन प्रणाली में जीते रहे हैं। समाज और समूह में रहते हैं। तुम्हारे द्वारा दी गयी कठिन जिन्दगी को अपने गीतों, अपने नृत्य से भुलाते रहे हैं तुमने हमें सभ्यता से दूर ठेला/ विस्थापित किया/ हमने बांसुरी और नगाड़े के माध्यम से आपसी संवाद जारी रखा/ अब यह संवाद नाद बनकर फूट पड़ा है/ बांसुरी को हमने "मशाल" बना लिया है/ अब देश और भाषाओं की सीमाएँ और कबीलों के दायरे लांघकर हम अपने समूचे समाज को रोशन करने के लिए संकल्पबद्ध हो गये हैं हमारी भाषाओं ने अब कलम थाम ली है। हम लिखने लगे हैं कि अब हमने अपनी अस्मिता पहचान ली है।"[2]

आदिवासी साहित्य में विद्यमान वेदना, पीड़ा, आक्रोश का भाव इसका प्रतीक है। गौरतलब है कि अपनी उपेक्षा और अन्याय के विरोध में आदिवासी समुदाय प्रतिरोध करता रहा है। देश के अनेक हिस्सों में आदिवासी विद्रोह की लम्बी परम्परायें रही हैं। मिशन विद्रोह जैसे आन्दोलन से आदिवासी समाज की तड़प बेचैनी और संघर्ष का अंदाजा लगाया जा सकता है।

'तीर और कमान आदिवासी की पहचान रहे हैं। आज यह 'कलम की शक्ति' के रूप में उद्घाटित हो रही है। जैसे–जैसे जागरूकता और चेतना बढ़ रही है, ज्ञान की रोशनी से जंगलवासी परिचित हो रहे हैं, वैसे–वैसे उनमें अपने स्तत्व बोध और अस्मिता का भान दृढ़ होता जा रहा है। जीवन के बुनियादी हकों के लिए वे संगठित हो रहे हैं।

कलम की ताकत उनके संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदाकर रही है। आज आदिवासी लेखन अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक विशिष्टताओं का उद्घाटन कर उस समूची व्यवस्था को प्रश्नांकित कर रहा है, जिस पर सभ्य कही जाने वाली सभ्यता गुमान करती रही है। यह भी कि, यह विमर्श समूची सांस्कृतिक परम्परा के पुनर्पाठ की आवश्यकता भी जता रहा है।

आदिवासी लेखन में कुछ ऐसे साहित्यकार आ रहे हैं, जिन्होंने अपने लेखन का मुख्य उद्देश्य आदिवासी जीवन, उनकी समस्याएँ, उनके संघर्ष, चुनौतियाँ एवं क्या सुधार और सम्भावनायें हो सकती हैं, इसी को लिया है, इन लेखकों में रामदयाल मुण्डा, हरिराम मीणा, गंगा सहाय मीणा, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, वन्दाना टेटे, अनुज लुगुन, प्रमोद मीणा, रोज केरकेट्टा, बन्नाराम मीणा आदि प्रमुख हैं। जिन्होंने आदिवासी जीवन को समाज के सामने एक विमर्श के रूप में प्रस्तुत किया। अन्य विमर्शों की तरह आदिवासी समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। आदिवासियों की संस्कृति, परम्परा, भाषा, लोक कथाओं को समाज के सामने उजागर किया। ये आदिवासियों के लिए एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ है। वर्तमान में जो आदिवासी नहीं है, वो भी इस विमर्श को पढ़ना, लिखना और समझना चाहता है।

हरिराम मीणा आदिवासी जीवन एवं उनके अस्तित्व पर आये संकट के विषय में लिखते हैं– 'आदिवासियों की मूल समस्या अंततः अस्तित्व के संकट की बन चुकी है। आदिवासियों को तो यह भी पता नहीं कि उन पर यह अस्तित्व का संकट क्यों है? वे भौंचक्का हैं, किन्तु मौन! इसीलिए आदिवासी साहित्य के तेवर अलग होंगे।'[3] अस्तित्व के संकट की चरम सीमा अण्डमान में जो हरिराम मीणा ने देखी, उसे कविता के रूप में इस प्रकार व्यक्त किया है–